युवा आकांक्षाओं के समक्ष चुनौतियां

ऋतु सारस्वत

युवा बल को युवा शक्ति में रूपांतरित करने के लिए सबसे पहले युवा को अपने स्वभाव को पहचानने का प्रशिक्षण देना होगा। स्वभाव के अनुरूप कार्य का चयन करने से पूरी क्षमता व संभावना का विकास हो सकता है। भीड़ का हिस्सा बन, अपनी आजीविका का चयन करने के स्थान पर अपने स्वभावानुरूप शिक्षा व तदनुरूप व्यवसाय का चयन आत्मसंतुष्टि का भाव देगा। स्वभाव से स्वावलंबन युवा आकांक्षाओं की पूर्ति का मूलमंत्र सिद्ध हो सकता है। वह कार्य या विषय जो रुचिकर हो, उसकी राह में आयी चुनौतियां भी दुष्कर प्रतीत नहीं होती

"बरगद के पेड़ की पूरी शक्ति उस पेड़ के बीजों की शक्ति के बराबर है। इस तरह से हम दोनों आप और मैं, समान हैं, लेकिन हम अपनी प्रतिभाओं को अलग-अलग रूपों से प्रस्तुत करते हैं। कुछ बीज बरगद का पेड़ बन जाते हैं, लेकिन बहुत सारे बीज पौधे के रूप में ही मर जाते हैं और कभी पेड़ नहीं बन पाते। निश्चित परिस्थितियों और पर्यावरणीय स्थितियों के कारण कई बीजों को नुकसान पहुंचता है और वे मिट्टी में मिलकर खाद बन जाते हैं, और नये बीजों को पेड़ बनने में मदद करते हैं। आपने देश के लिए कार्य किया है और अनेक वैज्ञानिकों, इंजीनियरों व ज्ञानकर्मियों की मदद की है। क्या आप बता सकते हैं कि आप यह कैसे सुनिश्चित करते हैं कि उनकी योग्यताएं बरबाद न हों या उनका विकास अपरिपक्वावस्था में ही अवरुद्ध न हो जाए, उन बरगद के बीजों की तरह, जो कभी पेड़ बन नहीं पाये" यह पत्र टी. सरवनन नामक एक विद्यार्थी ने देश के पूर्व राष्ट्रपति एवं महान वैज्ञानिक डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम को लिखा था। यह पत्र सिर्फ टी. सरवनन की जिज्ञासा, उत्कंठता और अभिलाषाओं के मध्य व्याप्त चुनौतियों को ढूंढने का प्रयास भर नहीं है, यह हर भारतीय युवा का प्रश्न है। अपनी सफलताओं के स्वप्न को बुनते हुए, असफलताओं के कठोर धरातल पर टकराने की पीड़ा और उसके अनुत्तरित प्रश्नों के उत्तर को ढूंढ़ने की चेष्टा है।

भारत में दुनिया की सर्वाधिक युवा आबादी है। इसका सीधा-सा अर्थ है, यह देश ऊर्जा से भरपूर है फिर प्रश्न यह उठता है कि क्या देश का युवा भी स्वयं के बारे में इतना ही उत्साहित, आत्मविश्वास से भरपूर और सफलताओं को छूने को तत्पर है? शायद नहीं, क्योंकि उसकी आकांक्षाओं के समक्ष अनेकानेक चुनौतियां हैं। इसमें किंचित् भी संदेह नहीं कि हर युवा विशिष्ट बनना चाहता है। हर व्यक्ति में विज्ञान, कला या समाज और दुनिया को बदल देने की क्षमता और आकांक्षा होती है परन्तु इन क्षमताओं पर प्रश्न चिह्न तब अंकित हो जाता है, जब अनुकूल परिस्थितियां न हों। वे अनुकूल परिस्थितियां कौन-सी हैं? इस विषय पर चर्चा करने से पूर्व कुछ तथ्यों और आंकड़ों पर विचार करना आवश्यक हो जाता है।

जीविका के प्रश्न

किसी भी देश के युवा के जीवन का सर्वप्रमुख और सर्वप्रथम प्रश्न, उसका जीविकोपार्जन होता है। इसमें अति धनाढ्य वर्ग या उच्च मध्यम वर्ग के युवाओं को अपवाद स्वरूप देखा जा सकता है। परंतु ऐसे युवाओं की संख्या बहुत कम है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि देश के युवाओं के सामने रोजगार प्राप्त करना सबसे बड़ी चुनौती है। फरवरी 2017 में राज्यसभा में प्रश्नकाल के दौरान एक सवाल के जवाब में योजना राज्यमंत्री ने कहा कि कुल बेरोजगारी दर पांच प्रतिशत है। केंद्र सरकार के रोजगार, सृजन पर जोर के बावजूद देश में बेरोजगारों की संख्या का बढ़ना चिंता का विषय है। एक

लेखिका बीते 18 वर्षों से महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय से संबद्ध एक महाविद्यालय में समाजशास्त्र का अध्यापन कार्य कर रही हैं। इनके निर्देशन में कई शोधार्थियों को डॉक्टरेट की उपाधि दी जा चुकी है। देश के प्रमुख समाचार पत्रों के संपादकीय पृष्ठों में 450 से अधिक लेख प्रकाशित। माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान सरकार की 5 पुस्तकों में सहलेखिका। लोकसभा चैनल में विषय विशेषज्ञ के तौर पर वार्ताओं में प्रतिभागिता। ईमेल: saraswatritu@yahoo.co.in

और महत्वपूर्ण प्रश्न यह भी है कि क्या आज की शिक्षा व्यवस्था, युवाओं की प्रतिभाओं को पहचानने में सक्षम है या फिर किताबी ज्ञान पर आधारित डिग्रियों की लंबी फेहरिस्त के बीच, देश के युवाओं में उस स्तर की प्रतिभा का अभाव है जितनी संबंधित नौकरियों के लिए चाहिए। खासकर सूचना प्रौद्योगिकी और विज्ञान पारिस्थितिक तंत्र में रोजगार ढूंढ़ते युवाओं में प्रतिभाओं की भारी कमी है। हाल में जारी एक आंकड़े में दावा किया गया है कि इस देश के 95 प्रतिशत इंजीनियर सॉफ्टवेयर डेवलपमेंट के क्षेत्र में नौकरी करने के लायक नहीं है। जब इंजीनियरिंग की डिग्री या डिप्लोमाधारी युवाओं का यह हाल है, तो कल्पना की जा सकती है कि जो युवा शिक्षा भी पूरी नहीं कर पाये या जिनके पास तकनीकी डिग्रियां नहीं हैं, उनका क्या हाल होगा? स्वाभाविक है युवा भारत की यह तस्वीर अच्छी नहीं कही जा सकती, इसलिए यह जानना और समझना बहुत जरूरी हो जाता है कि क्यों, देश का युवा, उन स्वप्नों को पूरा नहीं कर पा रहा है जो वह अपने लिए देखता है।

युवा आकांक्षाएं व सामाजिक बदलाव

दरअसल हमारा सामाजिक पर्यावरण कुछ निश्चित परिपाटियों के मध्य ही सुगठित होता है, और उसके द्वारा सुनिश्चित पैमानों के आधार पर ही सफलता और असफलता की परिभाषा रची जाती है। स्वतंत्रता पूर्व वैदिक संस्कृति में या फिर मध्यकाल में देश के युवा वर्ग ने किन चुनौतियों का सामना किया इसके संबंध में, विभिन्न मंचों पर चर्चाएं होती रही हैं। परंतु विगत तीन दशकों में भारत का युवा किन चुनौतियों का सामना कर रहा है इसके गहन विमर्श की आवश्यकता को शायद अनुभव नहीं किया गया क्योंकि समाज की निश्चित परिपाटियों के विरुद्ध जाना कुचेष्टा माना गया। अगर हम 19वीं सदी के अंत तक आते-आते, युवा वर्ग की आकांक्षाओं का आंकलन करने का प्रयास करें तो पाएंगे कि उनकी आकांक्षाएं पल्लवित होने से पूर्व ही, दबा दी गयी। उन्हें परिवार और समाज के निश्चित दायरों के मध्य ही सफलता के पैमानों में से किसी एक का चुनाव करने की अनुमति दी गयी और अगर हम यह सोचते हैं कि आज इस दायरे में कहीं परिवर्तन आ गया है तो यह हमारा भ्रम मात्र है। डॉक्टर या इंजीनियर बनने के चुनाव के मध्य, शायद ही कोई युवा कभी यह कहने का साहस जुटा पाया हो कि उसकी दिलचस्पी विज्ञान की इन शाखाओं में नहीं है। कला और संस्कृति को जानने, पढ़ने या अपने जीवन का उद्देश्य बनने का साहस कर पाना सहज नहीं रहा। क्योंकि महत्वपूर्ण यह नहीं है कि आप क्या चाहते हैं महत्वपूर्ण यह है कि आप ऐसा क्या करें कि जिससे शीघ्र अतिशीघ्र आप को रोजगार मिल सके। अगर रोजगार प्राप्त करना ही शिक्षा व्यवस्था का अंग होता तो भी निराशा की स्थिति नहीं होती। दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य तो यह है कि वर्तमान शिक्षा व्यवस्था ने युवाओं को भ्रमित कर दिया और संपूर्ण समाज ऐसे मिथकों के ढेर पर बैठ गया, जिसे दूर करना सहज नहीं है।

जीवन का लक्ष्य और उद्देश्य, जीवन की असीम संभावना, समस्या और समाधान समझने के लिए गहन विचार शक्ति का होना अनिवार्य है। यह शक्ति हमें यथार्थ शिक्षा द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। स्वामी विवेकानंद जी ने कहा 'शिक्षा देते समय और भी एक महत्वपूर्ण विषय को हमें याद रखना होगा, हमें विद्यार्थियों को किसी प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए, उन्हें स्वयं ही गहन चिंतन करने को प्रोत्साहित करना चाहिए, शिक्षा इस प्रकार दी जानी चाहिए ताकि वे स्वयं विचार करना सीख जाएं।'

पहला मिथक यह कि शिक्षा के मायने डिग्रियां हासिल करना है। दूसरा मिथक यह है कि विज्ञान और उसकी विभिन्न शाखाओं से जुड़े विषय, प्रतिभा के उचित मानक है, तीसरा मिथक यह है कि साहित्य, कला और सामाजिक विज्ञान जैसे विषय प्रतिभाविहीन विद्यार्थियों का चुनाव होते हैं, चौथा मिथक यह है कि सफलता और आर्थिक स्वावलंबन के लिए प्रबंधन डिग्री जैसी उच्च स्तरीय, शिक्षा की आवश्यकता है। ऐसे अनेक मिथकों के मध्य, युवाओं की आकांक्षाएं स्वयं ही भ्रमित होकर, आगे बढ़ने का साहस कर नहीं पाती। अगर वाकई उच्च स्तरीय शिक्षा के मानक सत्य होते तो, बेरोजगारों की एक लंबी फौज नहीं दिखायी देती। मौजूदा शिक्षा व्यवस्था में समझने के बजाय रटाया जाता है, और युवाओं को हुनर सिखाने और उनकी सोच बदलने की कोशिश नहीं की जाती। सच तो यह है देश के युवा ऐसी डिग्रियों के साथ बाहर निकल रहे हैं, जो उन्हें कुछ नहीं सिखाती। ऐसे दौर में इस शिक्षा का कोई मतलब ही नहीं है, जब नवाचार का महत्व बढ़ने के साथ तकनीक की गति भी बढ़ती जा रही है। ऐसे में शिक्षा की कमजोर बुनियाद वाले लाखों छात्रों का भविष्य स्वाभाविक तौर पर उज्ज्वल नहीं हो सकता तो ऐसे में क्या?

जीवन का लक्ष्य और उद्देश्य, जीवन की असीम संभावना, समस्या और समाधान समझने के लिए गहन विचार शक्ति का होना अनिवार्य है। यह शक्ति हमें यथार्थ शिक्षा द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। स्वामी विवेकानंद जी ने कहा 'शिक्षा देते समय और भी एक महत्वपूर्ण विषय को हमें याद रखना होगा, हमें विद्यार्थियों को किसी प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए, उन्हें स्वयं ही गहन चिंतन करने को प्रोत्साहित करना चाहिए, शिक्षा इस प्रकार दी जानी चाहिए ताकि वे स्वयं विचार करना सीख जाएं।' वर्तमान पीढ़ी सत्य को स्वीकारने में हिचक रही है। यह सत्य है कि जिस तादाद में जनसंख्या बढ़ रही है उस अनुपात में रोजगार सृजित करना असंभव है। व्यवस्थाओं पर अंगुली उठाने के बजाय, यह आवश्यक हो जाता है कि स्वयं यह विचार किया जाए कि जिस राह को उन्होंने चुना है क्या वह उनके स्वभावगत है।

सामर्थ्य की पहचान जरूरी

युवा बल को युवा शक्ति में रूपांतरित करने के लिए सबसे पहले युवा को अपने स्वभाव को पहचानने का प्रशिक्षण देना होगा। स्वभाव के अनुरूप कार्य का चयन करने से पूरी क्षमता व संभावना का विकास हो सकता है। भीड़ का हिस्सा बन, अपनी आजीविका का चयन करने के स्थान पर अपने स्वभावानुरूप शिक्षा व तदनुरूप व्यवसाय का चयन आत्मसंतुष्टि का भाव देगा। स्वभाव से स्वाबलंबन युवा आकांक्षाओं की पूर्ति का मूलमंत्र सिद्ध हो सकता है। वह कार्य या विषय जो रुचिकर हो, उसकी राह में आयी चुनौतियां भी दुष्कर प्रतीत नहीं होती। परंपराओं का निर्वहन करने के प्रयास में रुचिकर विषयों का चुनाव न

करना स्वयं के लिए दु:खद होता है परंतु संपूर्ण व्यवस्था में भी असंतुलन की स्थिति उत्पन्न होती है। सच तो यह है कि वर्तमान परिस्थितियों में, युवा आबादी को उपयोगी कौशल में प्रशिक्षित करना, फिर इनके लिए पर्याप्त रोजगार उपलब्ध कराना तथा उद्योग कृषि व सेवा क्षेत्र में संतुलन स्थापित करना अपने आप में बड़ा ही दुष्कर कार्य है। उच्च शिक्षा में असंतुलित वृद्धि के कारण एक ओर हम बड़ी संख्या में तैयार हो रहे इंजीनियर्स (अभियंताओं) को उचित रोजगार नहीं दे पा रहे हैं वहीं दूसरी ओर अनेक आवश्यक कार्यों के लिए प्रशिक्षित व्यक्ति उपलब्ध नहीं है। एक आकलन के अनुसार स्नातक स्तर पर कला क्षेत्र में घटते प्रवेश के कारण आने वाले दशकों में पूरे विश्व में भाषा शिक्षकों की कमी होगी। तकनीकी क्षेत्र के बढ़ते प्रभाव के कारण मूलभूत विज्ञान यथा भौतिकी, रसायन तथा जीव विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान करने के लिए पर्याप्त संख्या में वैज्ञानिक नहीं मिल रहे हैं। इन वास्तविकताओं के साथ, एक महत्वपूर्ण प्रश्न यहां यह उत्पन्न होता है कि वे जो चित्रकला, भाषा या संगीत में रुचि रखते हैं, जिनके सपनों के ताने-बाने इनके आसपास बुन जाते हैं, उनके सामने जीविकोपार्जन का संकट, उन्हें उन पंक्तियों में सम्मिलित होने के लिए विवश कर देता है, जहां पहले ही लंबी कतारें हैं।

आर्थिक दबाव भी कम नहीं

आर्थिक विवशताएं, देश की युवा आबादी के एक बहुत बड़े भाग की चुनौती है, जिसके चलते वह उच्च शिक्षा से वंचित हो रहे हैं। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सामाजिक विभेद एक गंभीर चुनौती बनकर उभरा है। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के अमीर-गरीब छात्रों के बीच बढ़ती इस खाई को यूनेस्को ने चिंताजनक करार दिया है। *ग्लोबल एजुकेशन मॉनिटरिंग* रिपोर्ट का हवाला देते हुए यूनेस्को ने दुनिया के सभी देशों की सरकारों से गैप (अंतराल) को कम करने की अपील की है। यूनेस्कों ने एक सुझाव में बताया है कि सरकारी स्तर पर एक ऐसी एजेंसी हो जो छात्र सहायता से संबंधित सभी तरह की जरूरतों के बीच तालमेल स्थापित कर सकें। इन जरूरतों में शिक्षा ऋण, अनुदान और स्कॉलरशिप आदि हो सकते हैं। *ग्लोबल एजुकेशन मॉनिटरिंग*, का मानना है कि छात्रों की बढ़ती संख्या के लिहाज़ से उनको आर्थिक सहायता पहुंचाना सहज नहीं है पर नीतिगत व्यवस्था के जरिए सरकार इन चुनौतियों से पार पा सकती है। बैंक व अन्य वित्तीय संस्थानों से छात्रों को मिले ऋण की मासिक किश्त छात्रों की मासिक आय के 15 प्रतिशत से कम होनी चाहिए। ऐसा होने पर छात्र न केवल पाठ्यक्रम पूरा कर पाएंगे बल्कि ऋणों की अदायगी करना भी उनके लिए आसान हो जाएगा। इन नीतिगत विषयों पर चर्चा और उनके अमलीकरण के मध्य एक अंतराल और भी है और वह है स्वयं की पात्रता सिद्ध करना।

विषमता का विष मिटाना जरूरी

भारतीय सामाजिक परिवेश में यह दलित समुदाय से संबंधित छात्रों और लड़कियों के लिए बेहद ही चुनौती भरा लक्ष्य है क्योंकि असमानता की जड़ें आज भी इतनी गहरी हैं कि यह सहज स्वीकार ही नहीं किया जाता कि दलित युवा और छात्राएं प्रतिभाशाली हो सकती हैं। इन दोनों ही वर्गों के लिए कुछ निश्चित परिधियों के खाके खींच दिये गये हैं और अगर इन खाकों को पार करके, वे स्वयं को सिद्ध करने की चेष्टा भी करते हैं तो नकारात्मकता वातावरण में, उनके लिए यह बेहद कष्टकारी होता है।

> **गणित में उच्च शिक्षा प्राप्त कुशल व्यक्तियों के बीच भी गणित में योग्यता को लेकर पूर्वाग्रह का स्तर वैसा ही है। समान रूप से योग्य होने के बावजूद जहां लड़के कहीं अधिक आत्मविश्वास से भरे नजर आये, वहीं लड़कियों का आत्मविश्वास कमजोर रहा' यह तथ्य शोध पत्रिका, फ्रांटियर्स इन साइकॉलोजी के ताजा अंक में प्रकाशित हुआ है।**

डीआइसीसीआई के मुताबिक देश में दलित उद्यमों की संख्या वर्ष 2001-02 में 10.5 लाख थी, जो वर्ष 2006-07 में 28 लाख पार कर गयी थी। यह सालाना करीब 25 प्रतिशत से बढ़ रहा है। यहां तक कि उच्च शिक्षा में पढ़ने वाले दलित युवाओं में जहां 187 प्रतिशत की वृद्धि हुई है वहीं अन्य जातियों में 119 प्रतिशत। पंजाब में, उच्च जातियों के गढ़ में गिन्नी माही अंबेडकर के संदेशों को पंजाबी लोकगीतों के माध्यम से पहुंच रही है। इसी तरह दलित गायकी परंपरा में पूजा का नाम भी धूम मचाए हुए है। यू-ट्यूब में इनके गानों को 50-50 लाख बार तक देखा जा चुका है।

सामाजिक पृष्ठभूमि में रची बसी विचारधाराओं ने इस कदर मकड़जाल फैला रखा है कि उसमें उलझकर, उससे बाहर सोचना संभव ही नहीं हो पाता। इसकी बानगी यह है कि अधिकतर छात्राएं विज्ञान और गणित विषय लेने से कतराती हैं क्योंकि शिक्षा के आरंभ से ही उन्हें परिवार, स्कूल और समाज द्वारा यह विश्वास दिलाया जाता है कि यह विषय उनके लिए बने ही नहीं हैं, उनकी बुद्धि और योग्यता, सामाजिक विज्ञान के अध्ययन तक ही सीमित है जबकि निरंतर विभिन्न शोध यह इंगित करते रहे हैं कि स्त्री की बौद्धिक क्षमता पुरुष से किसी भी रूप में कमतर नहीं है। अमरीका की *फ्लोरिडा स्टेट यूनिवर्सिटी* के ताजा शोध में यह पाया गया कि अधिकतर लड़कियां खुद को लड़कों की अपेक्षा गणित में कमजोर मानती हैं जो उनका भ्रम है। इसी वजह से विज्ञान एवं इंजीनियरिंग में वे बहुत कम उच्च शिक्षा लेती हैं। जहां तक गणित की बात है तो शोध में लड़कियों और लड़कों के बीच किसी तरह की असमानता से संबंधित कोई अंतर नहीं है। लैंगिक असमानता की पराकाष्ठा यही है कि स्त्री को बौद्धिक स्तर पर पुरुष से कमतर माना जाता है और यह सोच आम से लेकर खास सभी में व्याप्त है। उल्लेखनीय है कि गणित में उच्च शिक्षा प्राप्त कुशल व्यक्तियों के बीच भी गणित में योग्यता को लेकर पूर्वाग्रह का स्तर वैसा ही है। समान रूप से योग्य होने के बावजूद जहां लड़के कहीं अधिक आत्मविश्वास से भरे नजर आये, वहीं लड़कियों का आत्मविश्वास कमजोर रहा। यह तथ्य शोध पत्रिका, *फ्रांटियर्स इन साइकॉलोजी* के ताजा अंक में प्रकाशित हुआ है।

दलित छात्रों की चुनौतियां, उनकी प्रतिभा से अधिक, उनके प्रति जागित भेदभाव से जुड़ी अधिक है। वर्ष 2013 में भारतीय विश्वविद्यालय पर *किंग्स कॉलेज लंदन* के एक अध्ययन में यह उल्लेखित है कि भारतीय उच्च संस्थानों में दलित छात्रों की योग्यता संशय के घेरे में रहती है और जाति के आधार

पर भेदभाव और उपहास से दलित छात्रों में यह भावना घर कर सकती है कि वे उच्च शिक्षा संस्थानों में प्रवेश के लिए योग्य नहीं है।

भाषा की बाधा भी गंभीर

लैंगिक असमानता और जातिगत भेदभाव से लड़ता युवा वर्ग, अपनी आकांक्षाओं को कैसे पूरा करे, यह प्रश्न सहज सुलझता प्रतीत नहीं होता। इन चुनौतियों के जूझने के साथ देश का युवा, अपने ही देश में हिंदी भाषा की उच्च शिक्षा में अवहेलना के कारण, न केवल अपना आत्मविश्वास खो रहा है अपितु अपनी आकांक्षाओं की राह में यह उसके लिए सबसे बड़ी चुनौती सिद्ध हो रही है। महात्मा गांधी ने कहा था– *यदि हिंदी अंग्रेजी का स्थान ले तो कम से कम मुझे तो अच्छा ही लगेगा। अंग्रेजी अंतरराष्ट्रीय भाषा है लेकिन वह राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती...।* तकनीकी पुस्तकों से लेकर राजनीति विज्ञान और समाजशास्त्र जैसे तमाम विषयों की पुस्तकों की हिंदी भाषा में अनुपलब्धता के चलते देश के एक बड़े हिस्से को अपने विषय को समझने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है वहीं उनकी रचनात्मकता भी इससे प्रभावित होती है।

वर्ष 2015 में मुंबई स्थित संस्थान *पुकार* द्वारा आठ उच्च शिक्षण संस्थानों का अध्ययन किया गया। इस अध्ययन में हिंदी भाषा से स्कूली शिक्षा ग्रहण किये, विद्यार्थियों ने स्वीकार किया कि अंग्रेजी भाषी विद्यार्थियों द्वारा उनके उच्चारण को लेकर माहौल बनाया जाता है वहीं अंग्रेजी बोलने वाले विद्यार्थियों ने माना कि उनकी दृष्टि में हिन्दी बोलने वाले, निम्न सामाजिक प्रस्थिति से ताल्लुक रखते हैं और अल्प ज्ञानी होते हैं।

हिंदी भाषा बोलने और अंग्रेजी ना बोल पाने वाले छात्रों को हेय दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति ने *शिक्षा* के उद्देश्यों पर ही प्रश्नचिह्न अंकित कर दिया है। क्या यह कल्पना की जा सकती है कि अपने ही देश में *हिंदी मीडियम टाइप* जैसे उलाहने के साथ हिंदीभाषी छात्रों को अलग-थलग करने की प्रवृत्ति उच्च शिक्षा में बदस्तूर कायम है। क्या इससे बड़ी चुनौती किसी देश के लिए हो सकती है कि उसके ज्ञान की निर्भरता, उसकी राष्ट्रभाषा या मातृभाषा ना होकर किसी अंतरराष्ट्रीय भाषा पर हो।

नवाचार को चाहिए राह

भारतीय युवाओं की आकांक्षाओं के मध्य एक बड़ी चुनौती, बंधे-बंधाए मार्गों के विपरीत न जाने की भी है। ये इसका कारण परिवार और शिक्षा संस्थाओं में निरंतर दिया जाने वाला, वह मनोवैज्ञानिक दबाव है जो लीक से हटकर सोचने की अनुमति नहीं देता। हाल ही में, प्रधानमंत्री ने अपने रेडियो कार्यक्रम *मन की बात* में कहा था कि युवाओं को कंफर्ट जोन (सुविधाजनक हालात) से बाहर निकलने, जीवन के नये अनुभव हासिल करने, नयी जगहें देखने, नये काम करने, नये हुनर सीखने की जरूरत है। पर क्या भारतीय युवा ऐसा करने का साहस जुटा पा रहा है? यह संभव नहीं दिखता क्योंकि वह किसी भी प्रकार का जोखिम लेने से बचना चाहता है। लाभ और हानि का गणित उन्हें उन्हीं मार्गों की ओर प्रेरित करता है जो सहज हो और अर्थ अर्जन में सहायक हो। हमें यह स्वीकारना ही होगा कि सामान्य जन की नजर में विद्या चाहे जो भी हो *अर्थकारी* होनी चाहिए। शिक्षा की एक अविचारित उदार किस्म की प्रणाली अपनायी गयी, जिसमें बहुत से युवा सिर्फ इसलिए सम्मिलित होते हैं क्योंकि उनके समक्ष इसके सिवाय और कोई विकल्प नहीं होता है।

वर्तमान यथार्थ यह है कि न केवल ज्ञान देने और पाने में बल्कि ज्ञान सृजन में भी सामाजिक संदर्भों की निर्णायक भूमिका होती जा रही है। आज का बदलता सामाजिक संदर्भ उच्च शिक्षा की पूरी प्रक्रिया को अनुबंधित किये हुए है और यही कारण है कि नवाचारों के मार्ग बेहद संकुचित हैं। हां, राहतभर इतनी सी है कि शनैः शनैः कुछ युवा *उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्त वरान्निबोधत* (अर्थात् उठो, जागो और तब तक मत रुको, जब तक कि अपने लक्ष्य तक न पहुंच जाओ) के बोध को स्वीकारने लगे हैं। उनके स्वप्नों में आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति से अधिक, आत्मसंतुष्टि के भावों को तुष्ट करने का साहस है। किताबों की दुनिया से बाहर निकल वह नवीन सोच को विस्तार देने का प्रयास कर रहे हैं।

भारत जो कभी कृषि देश माना जाता था, वर्ष 2011 की जनगणना में कुल जनसंख्या का मात्र 10 प्रतिशत कृषि में संलग्न है। परंतु बीते दशकों, देश का युवा, उच्च शिक्षा और सरकारी नौकरियों को छोड़कर इससे जुड़ रहा है क्योंकि उसका मानना है कि भारतीय मूलरूप से किसान हैं और उन्हें अपनी इस स्वभावगत विशेषता का संरक्षण करना चाहिए। वर्ष 2013 में 24 वर्षीय, जैसलमेर के इंजीनियर ने सरकारी नौकरी छोड़कर, एलोवेरा की खेती शुरू की अब सालाना 1.5 करोड़ से 2 करोड़ कमा रहे हैं। वहीं 30 साल के आईटी पेशेवर अभिजीत फाल्के ने महाराष्ट्र के विदर्भ प्रांत के किसानों की तकदीर बदल दी। जनवरी 2012 में *आपुलकी सामाजिक संस्थान* बनाकर, कृषि उत्पादन में लागत कम करना, गुणवत्तापूर्ण कृषि के लिए किसानों को प्रशिक्षित करना तथा किसानों की पैदावार को दलालों से बचाने के लिए 200 आईटी पेशेवर को अपने साथ जुड़ाने का काम किया। *सैन जॉस विश्वविद्यालय*, कैलिफोर्निया से इलेक्ट्रोनिक्स में मास्टर्स की डिग्री और फिर करोड़ों का कारोबार छोड़ राजस्थान के श्रीगंगानगर के रणदीप सिंह कंग ने जैविक खेती की और किसानों को जोड़ना शुरू किया। वह गोमूत्र की मदद से एक खास किस्म की जैविक खाद बना रहे हैं जिससे फसल की पैदावार बढ़ी है और पानी की खपत कम हुई है।

बीते दिनों संयुक्त राष्ट्र ने दुनियाभर से ऐसे 50 स्टार्ट अप्स का चयन किया है जिन्होंने धरती की बड़ी समस्याओं को निपटाने के लिए अलग नजरिया पेश किया हो। इस श्रेणी में देश के 18 वर्षीय स्कूली छात्र अनुभव वाधवा का नाम भी है जिसने *टायरलेस्ली* नाम से स्टार्ट अप की शुरुआत की है। *टायरलेस्ली* टायरों को जलाने से पैदा होने वाली पर्यावरण प्रदूषण संबंधी समस्याओं से निपटने का इनोवेटिव समाधान तलाशने में जुटा है। पर्यावरण स्वच्छता की दिशा में इस कार्य के लिए अनुभव को *यूनाइटेड नेशंस सस्टेनेबल डवलपमेंट सॉल्यूशंस नेटवर्क* के यूथ सॉल्यूशंस रिपोर्ट के पहले संस्करण में स्थान मिला है। अनुभव का उदाहरण, यह बताने के लिए काफी है कि आकांक्षाओं और चुनौतियों के मध्य शिकायतें, व्यवस्था के दोषों को ढूंढने की प्रवृत्ति, आयु का व्यवधान, आर्थिक समस्या और ऐसी ही अनगनित दलीले हैं तो दूसरी ओर इन सबको दरकिनार करते हुए सिर्फ अपने लक्ष्य को पाने का जुनून। चुनाव हमारा है कि हम आकांक्षाओं के व्यवधान को लेकर नकारात्मक हों, या अपने प्रयासों को लेकर सकारात्मक। ❑